International Journal of Applied Research 2017; 3(2): 494-496

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(2): 494-496
www.allresearchjournal.com
Received: 13-12-2016
Accepted: 19-01-2017

डॉ॰ मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर0बी0डी0 महिला महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ॰ मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर0बी0डी0 महिला महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत

बौद्ध धर्म में पर्यावरण बोध

डॉ॰ मंजु चौधरी

सारांश
प्राचीन काल से ही मनुष्य एवं प्रकृति का गहरा रिश्ता रहा है किन्तु मनुष्य की प्रगति करने की लालसा ने उसे प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ दिया है। जिसके कारणवश पर्यावरण संतुलन बिगड़ गया है। छठीं शताब्दी में बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान् गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों में पर्यावरण बोध के महत्व का विवरण किया है। यह परिवर्तन बोध को धार्मिक दार्शनिक विचार के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

महत्त्वपूर्ण शब्द: बौद्ध धम, पर्यावरण बोध, गौतम बुद्ध

प्रस्तावना
मनुष्य एवं प्रकृति के बीच पूर्ण समन्वय रहा है किन्तु बदलते वक्त के साथ स्थिति बदल रही है। अब मनुष्य प्रकृति के आमने–सामने है और अपनी सुख–समृद्धि के लिए प्रकृति का षोषण करने पर उतारू है। जो प्रकृति सदैव दिल खोलकर अपनी संपदा मनुष्य तथा अन्य जीवों पर लुटाती रही है। उससे सब कुछ हड़प लेने के दुःसाहस में मनुष्य ने अपने आपको नए संकट में डाल लिया है। यह संकट है–पर्यावरण में आ रही निरन्तर गिरावट। भूमि, हवा, जल, वन एवं जंतु ये सभी प्रकतिक संसाधन मनुष्य के पूर्ण विकास एावं अस्तित्व के लिए आवश्यक है–यही ससांधन पर्यावरण है।[1] ईसा पर्वू छठी शताब्दी मे जब भगवान बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ उस समय मुख्य समस्या आन्तरिक पर्यावरण की थी। प्राचीन इतिहास में यह द्वितीय शहरीकरण का काल था। इस काल में संरचनात्मक परिवर्तन हो रहा था। यह परिवर्तन बोध को धार्मिक दार्शनिक विचार के माध्यम से व्यक्त किया। धार्मिक एवं दार्शनिक जगत में व्याप्त बुराईयों को भगवान ने अतियों के रूप में देखा, अत्यधिक कमा सेवन एवं कठोर तपस्या के त्यागपूर्वक आर्य आष्टांगिक मार्ग की शिक्षा दी। शाश्वत एवं उच्छेदवाद के विचार को त्याग के साथ 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के मनन करने की सलाह दी गई। चार आर्य सत्यों के ज्ञान के बाद ही स्वंय भगवान ने अपने को बुद्ध घोषित किया। चार आर्य सत्यों में प्रथम आर्य सत्य है – दुःख आर्य सत्य, दूसरा है दुःख समुदय आर्य सत्य, जिसमें समस्त दुःखों का मूल कारण तृष्णा बतलाया गया है। इस तृष्णा को रोक दिया जाय तो समस्त दुःखों का आगमन रूक सकता है जिसे दुःख निरोध आर्य सत्य कहते है। आर्य आष्टांगिक मार्ग ही दुःख निरोधगामी मार्ग आर्य सत्य है। तृष्णा के वशीभूत होकर आज मानव प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है, जिससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है इसलिए भगवान बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं में तृष्णाओं का समूल नाष करने की शिक्षा दी है।[2] भगवान बुद्ध द्वारा स्थापित संध में भी इस बात का पूरा प्रयास किया गया कि तृष्णावान, लालची या भोगियों को संघ मं कोई स्थान नहीं मिले इस प्रकार संघ में आन्तरिक प्रदूषण को दूर करने का प्रयास किया गया जिसे आज पर्यावरण कहा जाता है। भगवान बुद्ध ने इन प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में भी संघ में वर्णित नियमों में स्थान दिया जिसका वर्णन इस प्रकार हैः भगवान बुद्ध के संघ में उपासक उपासिका एवं भिक्षु–भिक्षुणियाँ सम्मिलित है। उपासकों के लिए पंचशीलों का पालन करना अनिवार्य है एवं भिक्षु–भिक्षुणियों के लिए 'पातिमोक्ख' में वर्णित 227 एवं 331 नियम हैं पंचशीलों में सभी प्रकार की हिसां का त्याग, झठू, चोरी, अब्रहाचर्य एव नृत्यगीत, मालाधरण, सगीत, सुवर्ण एव अमल्यू शैय्या का त्याग है।[3] पाराजिक–प्रारम्भिक सबसे कठिन अपराध है। एक समय भिक्षुओं ने जंगल से बिना दी हुई लकड़ियाँ लाकर कुटी बनाई। राजा ने इस दुश्कृत्य की निन्दा की। भगवान के पूछने पर भिक्षुओं ने कहा–यह ग्राम से नहीं, जंगल से लायी गई हैं। भगवान ने उनकी निदां कर शिक्षापद प्रतिपादित किया जो कि भिक्षु ग्राम अथवा जंगल से चोरी समझी जाने वाली वस्तु का ग्रहण करें पाराजिक का दोषी होता है।[4]

संघादिसेस – 13 संघादिसेस हैं। पर्यावरण से सम्बन्धित इसमें निम्न नियम हैं। छठवें संघादिसेस मे कहा गया है कि कुटी बनवाते समय प्रमाणयुक्त बनवाना चाहिए। प्रमाण से अधिक या जीवहिंसा युक्त स्थान में कुटी बनवाने का दोष है। सातवें संघादिसेस में वर्णित है कि छन्न नामक भिक्षु ने

कुटी बनवाने के लिये नगरवासियों द्वारा पूजित चैत वृक्ष कटवा दिया। जनपदवासियों ने इस दृष्कृत्य पर दुःख प्रगट किया तब भगवान ने नियम बताया कि हिंसायुक्त स्थान पर कुटी निर्माण दोष है।[5]

तिस्सग्गिय पाचित्तिय – प्रथम में कहा गया है कि दस दिनों से अधिक अतिरिक्त चीवर रखने पर यह दोष होता है। दूसरे में कहा गया है कि आवश्यकता से एक कम चीवर रखना चाहिए। उससे अधिक रखने पर दोष है। ग्याहरवें में वर्णित है कि षडवर्गीय कौशेय वस्त्र से निःसृत आसन की कामना करने लगे जिससे बहुत से छोटे–छोटे जीवों का घात होता है तब भगवान ने यह नियम बनाया कि इसमें दोष है। इसी प्रकार काले भेड़ के ऊन का आसन बनवाने में, प्रतिवर्ष आसन बनवाने में यह दोष है। छः वर्षो तक नए आसन को नहीं ग्रहण करना चाहिए अन्यथा उक्त दोष है। दस दिनों से अधिक अतिरिक्त लोहे या मिट्टी के पात्र रखने में यह दोष है।[6]

पाचित्तिय–भिक्षु नवकर्म (जमीन खोदना) करते–करवाते थे जिससे एक इन्द्रिय जीवों की विराधना होती थी। तब भगवान ने शिक्षापद प्रतिपादित किया कि जो भिक्षु पृथ्वी खोदे या खुदवाये उसे यह दोष है। इसी प्रकार नवकर्म करते–करवाते समय वृक्षादि को काटकर फेकने में भी यह दोष है। भिक्षु पुराने विहार की मरम्मत कराते समय यव के खेत में खड़े हो जाते थे। खेतवाला इसको देखकर दुःखी होता था। तब भगवान यह नियम बनाया कि विहार बनवाते समय, दरवाजे बन्द करते समय या जंगल में घूमते समय हरियाली से अलग खड़ा होना चाहिए। अन्यथ यह दोष है। इसी तरह भिक्षु नवकर्म करते समय जीव वाले जल से तृण अथवा मिट्टी का सिंचन करते थे। भगवान ने इसे दोष बतलाया। सूर्यास्त के बाद उपदेश देने पर, आमिष भोजन, वस्त्रादि एवं सुरा कच्ची शराब आदि मांगने पर भी दोष बतलाया। पानी में खेल करने, जरूरत न हो फिर भी निरोगी भिक्षु द्वारा आग जलाना, प्राणीयुक्त जल को पीना, परिणाम से अधिक चारपाई या तख्त बनवाना, चारपाई या तख्त में रूई भरवाना, प्रमाण से अधिक लंगोटी, वर्षा की लुंगी एवं चीवर बनवाने में
भी पाचित्तिय दोष बतलाया है।[7]

दुक्कट– दुक्कट से तात्पर्य दुष्कृत्य है। इस संदर्भ में प्रमुख नियम इस प्रकार है – एक तल्ले से अधिक जूते धारण करने में, ख ाड़ाऊँ पहनने में, तृण मूल एवं कमल आदि की पादुकाएँ पहनने में यह दोष होता है। गायों की सींग, कान, गर्दन, आदि को पकड़ने में, सिंह, व्याघ्र, चीते के चर्म को धारण करने में, चमरा मढ़ी चारपाई में एवं मनुष्य मांस, हाथी मांस, घोड़ा मांस, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, चीता, भालू आदि मांस खाने में यह दोष है।[8]

थुल्लच्चम – कुषि का बना कपड़ा, वक्कल, फलक, केश, कम्बल, मृगछाल, चमड़ा वस्त्र पहनने में यह दोष है।[9]

वर्षावास – भगवान बुद्ध ने वर्षा के दिनों में तृण एवं एक इन्द्रिय वाले जीवों की पीड़ा को सुनकर वर्षावास का विधान किया था। इस सन्दर्भ में वर्णित है कि भिक्षुओं ने निवेदन किया दूसरे तैर्थिक जीवों की दया का ख्यालकर वर्षावास करते हैं जिससे समाज में उनकी प्रतिष्ठा एवं यश फैलता है। भगवान बुद्ध ने भी वर्शावास का प्रावधान किया।[10]

अख्यवास – भिक्षुओं के लिये वृक्ष के नीचे निवास करने का प्रावधान था। साथ ही विहार, प्रासाद, गुफा आदि भी विवाहित था। संयुक्तनिकाय में आरण्यक होने की प्रशंसा की गई है। वनसंयुक्त में वर्णन है कि भिक्षुओं द्वारा देर से आने पर या लापरवाही करने पर वन देवता भिक्षु को सर्तक करता है।[11] वन देवता भिक्षुओं को जंगल का वैभव बतलाता है।[12] एक बार भिक्षुओं के चले जाने पर वनदेवता विलाप करता है। और जंगल को सूना बतलाता है। भिक्षु के फूल सूँघने पर देवता चोरी का आरोप लगाता है। भिक्षु द्वारा कहने पर कि वह न कुछ लेता है, न नष्ट करता है, दूर से ही फूल सूँघता है, जबकि दूसरे लोग पुण्डरीक की पूरी कहानी ही उखाड़ देते हैं, उनको क्यों नही कहते? वनदेवता ने कहा कि मनुष्य धाई के कपड़े जैसा गन्दा है उसे कहना बेकार है लेकिन भिक्षु निश्पाप पवित्रता के खोजने वाले हैं इसलिए उनको बाल की नोक के बराबर पाप को भी बादल के साल सामान समझना चाहिए। देवता के इस प्रकार कहने पर भिक्षु अपनी गलती स्वीकार करते हुए कहा कि भविष्य में कोई ऐसी गलती करे तो वन देवता सचेत करता रहे। उत्तर में वनदेवता ने कहा कि वह कोई नौकर नही है। उन्हें वेतन नही मिलता है। भिक्षु स्वंय जाने एवं समझें।[13]
एक भिक्षु द्वारा मन में बुरे संसारी वितर्को के लाने पर वनदेवता ने भिक्षु को होश में लाने के विचार से कहा कि विवेक की कामना से बैठे उसका मन भाग रहा है जिस प्रकार पक्षी धूल पड़ जाने पर पंख फड़फड़ा कर उसे हटा देता है। उसी पकार स्मृतिमग्न भिक्षु को मन ही मन के राग को फड़फराकर झाड़ देना चाहिए।[14] आनन्द के गृहस्थों से धिरे रहने पर देवता कहता है – हे गौतम धावक! जंगल में आप निर्वाण की आकांक्षा से आवें, ध्यान करें, प्रमाद मत करें, चहल–पहल से उनका क्या मतलब है। एक भिक्षु द्वारा गृहस्थों कुलों में जाकर बहुत देर तक रूकने पर देवता कहता कि उनकी बदनामी हो रही है, कृपया ध्यान दें।[15] उपर्युक्त सन्दर्भ पर्यावरण संतुलन बोध के सूचक हैं। चूँकि छठी शताब्दी ईसा पूर्व से मध्य गंगा घाटी में आर्या के प्रवजन से नए भौगोलिक क्षेत्रों का प्रसार हुआ जो विदेध माथव क कहानी से स्पष्ट है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बड़े पैमाने पर जंगल जलाए गए। यहाँ की कठोर केवल मिट्टी को साधारण औजारों से तोड़कर खेती नहीं की जा सकती थी। अतः इन कार्यो को अंजाम देने के लिए लोहे के बने औजारों तथा भारी श्रम शक्ति का प्रयोग किया गया। इसलिए पशुबल की महत्ता बढ़ रही थी, पशुबलि के रोके बिना यह संभव नही था। निजी सम्पत्ति की अवधारणा, कृषक समुदाय में स्तरीयकरण, धान की पुनर्रोपण प्रणाली, सिंचाई की व्यवस्था एवं लौह तकनीक का कृषि में प्रयोग से अधिशेष उत्पादन होने लगा। अधिशेष उत्पादन ने कर प्रणाली को जन्म दिया। कर उगाहने वाली अनेक अधिकारियों का उल्लेख है। कर प्रणाली से राज्य निर्माण प्रक्रिया में मजबूती आयी तथा स्थायी सेना अस्तित्व में आयी। चूँकि कर के बिना स्थायी सेना रखना कठिन है तथा सेना के बिना राजस्व वसूल करना एवं शान्ति व्यवस्था बना रखना भी कठिन है, यह दोतरफा प्रक्रिया है। इस प्रकार राज्य के सभी तत्व स्पष्ट दिखते हैं साथ ही इस अधिशेष उत्पादन ने व्यापार एवं मुद्रा आधारित विनिमय प्रणाली को मजबूती प्रदान किया। यह पूरी प्रक्रिया इस बात की सूचक है कि छठी शताब्दी ईसापूर्व से गंगाघाटी के लोगों की जीवन यापन के आधारभूत स्रोत बदल रहे थे। मनुष्य और पर्यावरण के बीच का परिवर्तन सम्बन्ध टूट रहे थें, कारण बड़े पैमाने पर जंगलो की कटाई एवं पशु–हत्याएं हो रही थीं। गौतम बुद्ध ने सबसे पहले इस संकट को महसूस किया। संभवतः इसलिए बौद्ध धर्म को पर्यावरण बोध स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है।[16]

सन्दर्भ

1. ठाकुर विजय कुमार, 'बुद्धिस्ट रेस्पॉन्स टू एकोलॉजिकल चेन्जेज इन अर्ली इण्डिया', बुद्धिज्म एण्ड एकोलॉजी (सम्पादित), एसके. पाठक, नई दिल्ली, 2004, पृ. 41
2. नन्दी संयोजनों लोको, वितक्कस्य विचारणं। तव्हाय विष्पहानेन, निब्बानं इति वुच्चतीति।। संयुक्त निकाय, पृ. 37
3. खुद्दक पाठ।

4. भागचन्द्र जैन (सम्पादित), पातिमोक्ख, पृ. 6
5. वही, पृ. 11
6. वही, पृ. 21–35
7. वही, पृ. 364
8. चुल्लवग्ग।
9. संक्षिप्त निकाय, भाग–1, पृ. 199
10. पातिमोक्ख
11. सक्षिप्त विनय पिटक, 134
12. वही, पृ. 32
13. वही, पृ. 205
14. वही, पृ. 198
15. वही, पृ. 202
16. ठाकुर विजय कुमार, 'डिफॉरेस्टेड जंगल्स एण्ड डीपॉपुलेटेड टाउन्सः ए नोट ऑन द इकोलॉजिकल परसेप्शन ऑफ बुद्धिज्म इन अर्ली इण्डिया', बुद्धिज्म एण्ड ह्यूमैनिज्म बोध गया, 1995, पृ. 78